उपन्यास अंश

मानस का हंस

- अमृत लाल नागर

लेखक-परिचय

अमृत लाल नागर (1916 ई.-1990 ई.) ने लगभग आधी शताब्दी तक अपने सक्रिय लेखन से साहित्य-जगत् को गौरवान्वित किया। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। आपने हिन्दी गद्य की लगभग समस्त विधाओं में लेखनी चलाई। प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं-

उपन्यास - 'बूँद और समुद्र', 'सुहाग के नूपुर', 'अमृत और विष', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'मानस का हंस', 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'खंजन नयन' आदि।

कहानी संग्रह - 'वाटिका', 'अवशेष', 'एटम बम', 'पीपल की परी', 'एक दिल हजार अफ़साने' आदि।

अन्य - चैतन्य महाप्रभु (जीवनी), साहित्य और संस्कृति (निबंध), चकल्लस (व्यंग्य), हमारे युग निर्माता, सतखंडी हवेली का मालिक (बाल साहित्य) आदि।

पाठ-परिचय

'मानस का हंस' गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर आधारित उपन्यास है। संकलित अंश में तुलसीदास का अन्तर्द्वन्द्व, तत्कालीन समाज की मनःस्थिति तथा रत्नावली की त्यागमयी प्रतिमूर्ति का दिग्दर्शन होता है। इस अंश में तुलसीदास रामभक्ति के शिखर पुरुष के रूप में प्रतिष्ठापित हैं। उनके हृदय में रत्नावली के प्रति स्नेह के साथ उसके परित्याग का पश्चात्ताप भी है। लोक-कल्याण के लिए वे वैराग्यमय जीवन का अनुसरण करते हैं। उनके मार्ग में रत्नावली बाधक नहीं बनती, बल्कि तपस्विनी भारतीय नारी के समान उनका साथ देती है। वह प्रबुद्ध और तर्कशीला है। सम्पादित अंश में तुलसी-रत्नावली का संवाद मर्मस्पर्शी है।

****

गोस्वामी जी लोलार्क कुण्ड के मठ में भगवान श्रीकृष्ण की आरती करते हुए कृष्ण भक्ति का एक पद गा रहे हैं। मठ के आंगन में सम्भ्रांत भक्तों की भीड़ है। सभी उनके भजन पर मुग्ध हैं। आरती के बाद दर्शनार्थियों को गोस्वामी जी कृष्ण भक्ति का महत्त्व बतलाते हैं। सभी अवतारों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' वाली अपनी चौपाई का भाव अपने प्रवचन में निरूपित करते हैं। शिव के गुणगान करते हैं। लोगों को समझाते हैं- ''जैसे चुटकी में डोर सधी होने पर पतंग को, आकाश में चाहे कहीं भी विचरे, कोई बाधा नहीं पहुँचती। वैसे ही अपने इष्ट से सधकर भाव की डोर में बँधी हुई मन पतंग को सारे आकाश में उड़ाओ, सब देवों के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करो तो तुम्हारा इष्ट भी सर्वव्यापी और सर्वसामर्थ्यवान् के रूप में अपने आपको प्रकट करेगा।''

भक्त गए, एकान्त हुआ। अपना प्रवचन आप ही खाने लगा, 'हे राम जी, मैंने सब कुछ किया और कर रहा हूँ। वेद, पुराण, शास्त्र और सन्तों की वाणी में आपको पाने के लिए जो-जो साधन बतलाए गए हैं वह सब मैं बड़ी ललक के साथ करता हूँ, फिर भी आप मुझे प्रत्यक्ष दर्शन क्यों नहीं देते? मेरे ध्यान में जैसे कभी-कभी हनुमान जी प्रकट हो जाते हैं वैसे आप क्यों नहीं आते? मैं प्रीति तो बढ़ाता चलता हूँ पर प्रतीति

क्यों नहीं होती?' गोस्वामी तुलसीदास अपने-आप में उदास थे। अपने दुःखमय जीवन के सारे क्षण संताप के झरने में दृश्याधार बनकर तेजी से उतरते गए और उनके सामने सन्ताप को अधिक गहरा कर दिया।

एक शिष्य पूछने आया कि आज भगवान के भोग के लिए भोजन में कौन-कौन से व्यंजन बनें। इस प्रश्न ने गोस्वामी जी को अधिक खिन्न बना दिया। कहा - ''जो भगवान को रुचता हो वही बनवाओ।''

शिष्य बोला - ''गोलोकवासी गोस्वामी जी बड़े कुशल पाकशास्त्री भी थे। वे स्वयं अपने हाथ से नाना प्रकार के व्यंजन भगवान के लिए तैयार करते थे।''

''उन्होंने निश्चय ही अपनी स्वाद शक्ति प्रभु की स्वाद शक्ति बना ली होगी। मेरी स्वाद रूपिणी गऊ अभी भड़कती है। जाओ, जो रुचे सो बनाओ।''

शिष्य निश्चय ही कुछ खिन्न मन होकर चला गया। दालान में मन्दिर की चौखट का टेका लगाकर वे राधा-मुरलीधर की मूर्तियाँ निहारने लगे, 'हे कृष्ण रूप राम जी, मेरा मन अभी सधा भी नहीं था कि आपने मुझे इस वैभव की भट्टी में डालकर और अधिक तपाना आरम्भ कर दिया है। हे हरि, मुझ दीन-दुर्बल की इतनी कठिन परीक्षा आप क्यों ले रहे हैं! एक ओर तो दुनिया मुझे महामुनि और दूसरी ओर कपटी-कुचाली कहती है। केशव, यह दोनों परस्पर विरोधी विशेषताएँ तो मुझमें कदापि नहीं हो सकती। फिर भी लगता है कि मैं अति अधम प्राणी हूँ तभी आप मुझे अपनी प्रतीति नहीं देते। मुझे एक बार भरोसा दिला दो राम जी। एक बार यह कक्ष तुम्हारे आश्वासन-भरे स्वर से गूंज उठे, तुम कह दो कि तुलसी तू मेरा है, तो बस, फिर मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे केवल आपका भरोसा, आपका सान्निध्य चाहिए।' इस प्रतीक्षा में कि भगवान अब अवश्य बोलेंगे, भोले भावुक गोस्वामी जी युगल मूर्ति की ओर टकटकी लगाकर भिखारी जैसी दीन मुद्रा में देखने लगे।

''विक्रमपुर से राजा भगत पधारे हैं।''

नाम सुनते ही तुलसीदास का उदास भाव तिरोहित हो गया। प्रसन्न और उत्साहित होकर बोले- ''कहाँ हैं राजा?'' कहकर वे मन्दिर वाले दालान से बाहर आए और आंगन पार करते हुए फाटक की ओर तेजी से बढ़ चले। देहली की चौखट पर पैर रखते ही उत्साह ठिठक गया। राजा तो सामने थे ही, रत्नावली भी थी। उनका तपोपूत मुख पहले से अधिक दिव्य लग रहा था। रत्नावली ने एक बार पति की आँखों से आँखें मिलाई। राजा भगत दाढ़ी–केश विहीन तुलसीदास के नये रूप को चकित दृष्टि से देखते हुए हाथ फैलाकर आगे बढ़े- ''अरे, भैया, तुम तो एकदम बदल गए।'' परन्तु तुलसीदास का उत्साह अब ठंडा पड़ चुका था। औपचारिक आलिंगन करके तुरन्त अपने-आपको मुक्त कर लिया; किंचित् रूखे स्वर में पूछा– ''इन्हें क्यों लाए?''

रत्नावली तब तक तेजी से आगे बढ़कर उनके पैरों में गिर चुकी थी। तुलसीदास ने अपने पैरों पर रत्नावली की उंगलियों का स्पर्श अनुभव किया। उस स्पर्श में इतनी तृप्ति थी कि पल-भर के लिए मन से राम बिसर गए। रोष ठहर न पाया। मृदुल स्वर में राजा से कहा- ''भीतर चलो, विश्राम करो, फिर बातें होंगी। (शिष्य की ओर देखकर) प्रभुदत्त!''

''आज्ञा सरकार।''

''अपनी माता जी को ऊपर के कक्ष में पहुँचा दो। भगत जी के रहने की व्यवस्था मेरी बगल वाली कोठरी में करो। माता जी यदि गंगा स्नान के लिए जाना चाहें तो किसी को उनके साथ भेज दो।''

रत्नावली जी के चेहरे पर पति के इन शब्दों ने सन्तोष की आभा प्रदान कर दी।

नहा-धोकर रत्नावली मठ में लौट आई। राजा भगत गंगा जी से ही अपने एक काशी स्थित नातेदार हिरदै अहिर से मिलने के लिए चले गए।

मठ के सारे शिष्यों और सेवकों को तब तक मालूम हो चुका था कि गोस्वामी जी की पत्नी आई हैं। सभी उनके प्रति अपना आदर प्रकट कर रहे थे। एक बार तुलसीदास ने किसी भृत्य से 'माता जी' के सम्बन्ध में पूछा तो पता चला कि वे रसोईघर में रसोइये को सहायता दे रही हैं। तुलसीदास के मन पर सन्तोष के भाव ने छाना चाहा पर छा न सका; लेकिन किसी प्रकार का असन्तोष भी मन में न जागा। वे भागवत बाँचते रहे।

भोजन के समय रसोई में वर्षों पूर्व नित्य मिलने वाला स्वाद आज फिर मिला। सन्तोष हुआ। राजा से उन्होंने गाँव-जवार में सबकी खैर-खबर पूछी। अपने रामायण रचने की बात, अयोध्या, मिथिला और सीतामढ़ी आदि यात्राओं की चर्चा भी उनसे की, पर रत्नावली के सम्बन्ध में एक शब्द भी न पूछा।

दूसरे दिन टोडर आए। तुलसीदास ने उनसे राजा भगत का परिचय कराया और पत्नी के आने की सूचना भी दी। तुलसीदास बोले- ''गंगाराम को इस बात की सूचना दे देना। हम चाहेंगे कि रत्नादेवी हमारे बाल मित्र की धर्मपत्नी के प्रति अपना आदर प्रकट करने जाएँ।''

टोडर उल्लसित स्वर में बोले- ''हाँ, हाँ, वहाँ जाएँगी और मेरे यहाँ भी पधारेंगी। जिस दिन गठजोड़े से महात्मा जी की जूठन गिरने का सौभाग्य मेरे घर को मिलेगा, उस दिन मेरा जन्म सार्थक हो जाएगा।''

दो-चार दिन बीत गए। इस बीच में तुलसी और रत्ना का आमना-सामना एक बार भी न हुआ। तुलसी चाहते थे कि उन्हें हिरते–फिरते रत्नावली की सूरत देखने का मौका मिल जाय पर रत्नावली ने सतर्कतापूर्वक अपने आपको उनकी दृष्टि से बचाया। हाँ, भोजन के समय उन्हें, अपनी थाली में हर व्यंजन में रत्नावली के हाथ का स्पर्श मालूम पड़ता था। वे थाली के सामने बैठकर बार-बार रत्नावली की छवि के साथ अपने मन में बँध जाते थे।

पण्डित गंगाराम के यहाँ सूचना पहुँची तो रत्नावली को लिवा जाने के लिए तुरन्त उनके यहाँ से पालकी आ गई। रत्नावली प्रह्लाद घाट गई तो भोजन का वह स्वाद भी चला गया। रात के समय वे और राजा बैठे हुए धर्म चर्चा कर रहे थे। रसोइया दो गिलासों में दूध लेकर आया। तुलसीदास बोले- ''अरे भाई, गोसाईं क्या बना हूँ कि आठों पहर तर माल चाभते–चाभते दुःखी हो गया हूँ।'' एक घूंट पिया, मलाई चाभते हुए मुँह बनाया, फिर मुस्कराए, कहा- '' वाह रे राम जी, कहाँ तो एक वह दिन था कि कटोरी-भर छाछ पाने के लिए मैं ललाता था और कहाँ अब इस सोंधे दूध की मलाई को खाते भी खुनस लगती है।''

राजा बोले- ''काहे खुनसाते हो भइया! तुम्हारी जिभ्या से भगवान जी स्वाद लेते हैं। गोसाइंयों में हमें यही बात तो अच्छी लगती है कि गोसाई लोग दुनिया का हर भोग राजी होकर ग्रहण करते हैं पर अपने स्वाद और सुख को वे भगवान का मान कर ही चलते हैं।''

गोस्वामी जी महाराज चुप रहे, दूध पीते रहे। बात में उन्हें राजा के मन का हल्का-सा संकेत मिल गया था। उन्होंने तुरन्त ही राजा भगत की मनोधारा का मुहाना बन्द करने का निश्चय किया, कहा- ''है तो यह ऊँची बात, पर खरा गोस्वामी ही इस पानी पर बिना पैर भिगोए चल सकता है। पूर्ण गोस्वामीत्व पाने के लिए मैं अभी तक राम जी की ड्योढ़ी का भिखारी हूँ।''

राजा, तुलसी का पैंतरा समझ गए। उन्होंने भी अपने पक्ष को दृढ़ता से प्रस्तुत करने की ठानी, कहने लगे- ''दो तपसी जब मिल जाते हैं तब दोनों को एक-दूसरे से आगे बढ़ने का हौंसला मिलता है। तुम्हारी तपस्या तो भइया सारा जग देख रहा है पर हम तो भौजी का तप देख-देखकर ही अपने मन को ठिकाने पर ला पाए हैं। इस कलिकाल में ऐसा कठिन जोग साधने वाली जोगिन मैंने नहीं देखी।''

तुलसी चुप रहे, रत्नावली की कठिन साधना के प्रति अपने मित्र के यह उद्‌गार सुनकर उन्हें भला लगा, उन्हें वैसा ही सन्तोष हुआ जैसा कि अपने सम्बन्ध में सुनकर होता। और यह सन्तोष जिस तेजी से अपने चरम बिन्दु पर पहुँचा उससे ही मन का परदा फड़फड़ाकर पलट भी गया। उन्होंने अपने आपको कस लिया। कुछ क्षणों के लिए भूला हुआ रामनाम फिर से घट में गुंजाना आरम्भ कर दिया। राजा कह रहे थे- ''गाँव में तुम्हारी रुचि की रसोई बनाती रहीं और किसी भूखे कंगले को खिलाती थी। आप बिना चुपड़ी, बिना साग भाजी से दो रोटी खाकर अपने दिन बिताती हैं। रोज तुम्हारी धोती धोना, तुम्हारी पूजा की सामग्री लगाना, तुम्हारे बैठके में झाड़ू लगाना, तुम्हारी एक-एक चीज को सहेज-संभालकर रखना, कहाँ तक कहें भैया, भौजी जैसी तपसिन हमने देखी नहीं। तुम घर से निकल गए पर उन्होंने अपनी भक्ति से तुम्हें अभी तक घर में ही बाँध रखा है।''

मन का राम शब्द राजा की बातों से उपजे सन्तोष से बीच-बीच में फिर बिसरने लगा। यहाँ आने पर रत्नावली की देखी हुई एक झलक उनके मन के दृश्य—पट पर बार-बार आने लगी। परदा दर परदा मन में यह इच्छा भी होने लगी कि एक बार उन्हें फिर देखें, बातें करें। मन की इस गुदगुदाहट से राम शब्द फिर प्रबल हुआ। वे दूध का गिलास रखकर कुल्ला करने के बहाने उठ पड़े। एक मन कह रहा था, चेत ! और दूसरा रत्नावली की मनोछवि निहारने में ही अटका हुआ था। कुल्ला करके दोनों जनें जब फिर अपनी—अपनी चौकियों पर बैठे तो राजा ने कहा- ''सीता जी के बिना राम जी कभी सुखी नहीं रह पाए। तुमसे अधिक भला और कौन समझ सकता है। तुमने तो सारी रामायन रच डाली है। जब रावन उन्हें हर ले गया तो भी, और जब उन्होंने उन्हें धोबी की निन्दा के कारण बाल्मीकि मुनी के आश्रम में भेज दिया तब भी, राम जी सुखी न रह पाये। बायाँ अंग जब कट जाय तब दायाँ भला कैसे सुख पा सकता है?''

तुलसीदास को यह बातें कहीं पर अच्छी लग रही थीं और कहीं वे इस ओर से उचटने का प्रयत्न भी कर रहे थे। थाली का बैंगन कभी इधर लुढ़कता और कभी उधर। तुलसी ने लेटकर चादर तानते हुए राजा की वाग्धारा को आगे बढ़ने से रोकने के लिए कहा- ''अच्छा, अब हम विश्राम करेंगे।'' लेट गए। चद्‌दर तान ली। करवट बदल ली, राम-राम भी जपना आरम्भ कर दिया, पर रत्नावली उनके मन से न हटी। इच्छा होने लगी कि रत्नावली उनके पास आए, उनसे अपना दुःख-सुख कहे। 'मैं राम के लिए तड़पता हूँ वह मेरे लिए। राम जी कदाचित् मुझे इसीलिए दर्शन नहीं दे रहे हैं कि मैं रत्नावली से निठुराई बरत रहा हूँ। रख लूँ अपने पास! उसे सन्तोष मिलेगा तो कदाचित् राम जी भी मेरे प्रति दयालु हो जाएँगे।' तुलसी का मन कभी ऊहापोह में रहता और कभी झटके के साथ उस मोह से अपने को उबारकर राम शब्द में लीन होने का प्रयत्न करता। उन्हें रात में अच्छी नींद न आई। सवेरे पण्डित गंगाराम के यहाँ से न्योता आया, उन्होंने कहला दिया कि वे नहीं आएँगे। टोडर आए तो उन्होंने भी अपना प्रस्ताव दोहराया, कहा- ''महात्मा जी आप दोनों ही एक दिन मेरी कुटिया पर अवश्य पधारेंगे।''

तुलसीदास को लगा कि राम उनकी परीक्षा लेने के लिए ही यह प्रस्ताव टोडर के मुख से कह रहे हैं।

वे बोले- ''विरक्त अब फिर से राग के बन्धनों में नहीं बँध सकता।''

''आप उन्हें अब यहीं रहने दें महात्मा जी....''

बात पूरी भी न हो पाई थी कि गोस्वामी जी ने उसे झटके से काट दिया और उत्तेजित स्वर में बोले- ''क्या तुम चाहते हो कि मैं अपने अथवा अपनी पत्नी के सुख के लिए समाज की आस्था को अधर ही में लटका दूँ?यह असंभव है टोडर।''

''क्षमा करें महात्मा जी, किन्तु इससे लोगों की आस्था क्यों बिखरेगी?वल्लभ गोस्वामी की घर-गृहस्थी उनके साथ रहती थी, फिर भी उन्होंने मोक्ष लाभ किया।''

तुलसी ने मीठी झिड़की देते हुए कहा- ''तुम समझते क्यों नहीं हो टोडर, आज का समय वल्लभाचार्य जी के दिनों जैसा नहीं है। कबीरदास जी वाला समय भी बीत गया। यह घोर कलिकाल है। नैतिकता का इतना ह्रास हो गया है कि उसे यदि एक स्तर तक उठाए न रखा जाएगा तो फिर सारा संसार अनैतिकता की लपेट में आए बिना कदापि न रह सकेगा।''

टोडर चुप हो गए। राजा भगत ने इस बार तुलसी-रत्नावली का मेल कराने के लिए पूरा षड्यन्त्र रचा था। उन्होंने पंडित गंगाराम, टोडर, यहाँ तक कि कैलास कवि को भी, अपने पक्ष में कर लिया था। गंगाराम आए उन्होंने कहा। कैलास आए उन्होंने कहा। मठ में रहने वाले शिष्यों ने भी कहा- ''माता जी परम विदुषी हैं, उनके यहाँ रहने से हमारे अध्ययन में बड़ी सहायता मिलेगी।''

तुलसी सुनते, ऊपर से विरोध भी करते परन्तु उनका मन कहता कि रत्नावली को पास रखकर यदि अपना ध्यान साधो तो अधिक सुगम रहेगा। 'काम विकार कभी न कभी मुझे सता तो जाता ही है। उससे कहीं अच्छा है कि मेरा यह विकार धर्म सम्मत होकर ही शान्त रहे।' मन का हाला-डोला उन्हें तरह-तरह से मथित करने लगा।

एक दिन नाथू जब उनके बाल बनाने आया तो उसी समय मठ के द्वार पर रत्नावली जी की पालकी भी आ लगी। रत्नावली जी पालकी से उतरकर ऊपर चली गईं। नाथू, गोसाईं जी की सेवा में पहुँचा। उनके चरणों में ढोका देकर उसने अपनी किस्वत से उस्तरा और पत्थर निकालकर उस्तरे को पैनाना शुरू किया। एक भृत्य ने आकर गोसाईं जी को पंडित गंगाराम के घर से माता जी के लौट आने का समाचार दिया। तुलसीदास के चेहरे पर सन्तोष की आभा चमकी। बोले- ''सरवन, उनसे बराबर पूछताछ करते रहना। उनकी सेवा में कोई कमी न आए।''

भृत्य सरवन के 'अच्छा महाराज जी', कहकर जाते ही पानी की कटोरी लेकर गोस्वामी जी के पास आते हुए नाथू बोला- ''माता जी आ गईं सरकार, यह बड़ा सुभ भया।''

तुलसीदास चुप रहे। उन्हें भी उस समय सुख का अनुभव हो रहा था। गोसाईं जी की ठोड़ी को पानी से तर करके मींजते हुए नाथू ने फिर अपना राग अलापा- ''ये दुनिया वाले बड़े अजीब होते हैं महाराज। कलजुग में सबका मन काला हो गया है।''

तुलसी आँखें मींचे मौन बैठे सुखानुभव करते रहे। नाथू ने बात को फिर आगे बढ़ाया- ''जब से माता जी कासी आई हैं तब से रोज लोग-बाग हमसे पूछते हैं कि नत्थू, माता जी अब क्या यहीं रहेंगी?अब हम क्या कहें सरकार जी?अरे माता जी यहाँ रहें चाहें न रहें, भला तुम्हारे बाप का क्या जाता है? बड़ी हवेली के गोसाईं महाराज भी तो गिरहस्त हैं। पर नहीं, उनको कोई कुछ न कहेगा। आपके लिए लोग रोक-टोक करते हैं। कहते हैं, चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरा पाख है। अब ये भी तपस्या छोड़कर भोग-बिलास में...''

तुलसीदास के मन में सन्तोष और सुख का महल बालू की दीवार-सा ढह पड़ा। वे उत्तेजित हो गए, बोले- ''इस प्रसंग को अब यहीं पर समाप्त कर दो नत्थू।''

सयाना नाथू गोस्वामी जी का रुख देखकर सहमकर चुपचाप अपने काम में लग गया। तुलसीदास के मनोलोक में अँधड़ उठने लगे। कभी अपने ऊपर, कभी दुनिया पर और कभी रत्नावली तथा राजा पर क्रोध आता कि वे उनकी शांति भंग करने के लिए यहाँ क्यों आए।

हजामत बनती रही, सिर और गालों पर उस्तरा चलता रहा, बार-बार पानी मींजा जाता रहा पर तुलसीदास का मन इन सब बाहरी क्रियाओं से अलिप्त होकर अपनी करुणा से आप ही विगलित होने लगा। मन जब अपनी विकलता को सह न पाया तो अपनी आदत के अनुसार राम जी के चरणों में शांति पाने के लिए दौड़ पड़ा- 'हे दीनबन्धु सुखसिन्धु कृपाकर, कारुणीक रघुराई ! सुनिए नाथ, मेरा मन त्रिविध ताप से जल रहा है। वह बौरा गया है। कभी योगाभ्यास करता है तो कभी वह शठ भोग-विलास में फँस जाता है। वह कभी कठोर और कभी दयावान् बन जाता है। कभी दीन, कभी मूर्ख-कंगाल और कभी घमण्डी राजा बन जाता है। वह कभी पाखण्डी बनता है और कभी ज्ञानी। हे देव, मेरे मन को यह संसार विविध प्रकार से सता रहा है। कभी धन का लालच सताता है, कभी शत्रुभय सताता है, और कभी जगत को नारीमय देखने लगता है। मैं अपने मन से बड़ा ही दुःखी हूँ रघुनाथ। संयम जप, तप, नियम, धर्म, व्रत आदि सारी औषधियाँ करके हार चुका; किन्तु वह मेरे काबू में नहीं आ रहा है। कृपा करके उसे नीरोगी बनाइए। अपने चरणों की अटल भक्ति देकर उसे शांत कीजिए, नाथ। मैं अब बहुत-बहुत तप चुका हूँ।' बन्द आँखों से आँसू टपकने लगे।

नाथू ने जो यह देखा तो अपना उस्तरा रोक दिया। उसके उस्तरे और हाथ का स्पर्श हटते ही तुलसीदास बाहरी होश में आ गए। भरी हुई आँखें खोलकर एक बार देखा, फिर पास रखे हुए अंगोछे से आँखें पोंछकर बोले- ''तुम अपना काम करो नत्थू, मेरा मन तो राम बावला है, कभी हँसता है कभी रोता है।''

नाथू जब अपना काम करके जाने लगा तो तुलसीदास बोले- ''अब जो कोई तुझसे पूछे तो कह देना कि माताजी अपने मोहवश चार दिन के लिए आई हैं, शीघ्र ही चली जाएँगी।''

''काहे महाराज, रहैं ना। दो ही दिनों में मठ के सारे लोग उनकी बड़ाई करने लगे। गोसाईं लोग तो घिरस्तास्रमी होते ही हैं।''

''मैं दूसरे गोसाइयों की तरह अनीति की चाल पर कदापि नहीं चल सकता। मैंने गृहस्थाश्रम का त्याग किया सो किया।'' उनके चेहरे पर हठ-भरी अहंता दमक उठी। थोड़ी देर के बाद ही उन्होंने नौकर को बुलाकर रत्नावली जी को कहलाया कि वे शीघ्र राजापुर लौट जाएँ।

रत्नावली ने उसी दास के द्वारा कहलाया कि वे उनसे मिलना चाहती हैं।

एक बार तुलसी का जी हुआ कि मना कर दें फिर कहते-कहते थम गए और कहा- ''भेज दो। कोठरी का पर्दा गिरा दो और उनके बैठने के लिए बाहर आसन भी बिछा दो।''

रत्नावली आईं; अपने और पतिदेव के बीच में टँगे हुए पर्दे को देखा, सिर झुका खड़ी हो गईं; पल-भर बाद हल्के से खखारा, धीमे स्वर में कहा- ''जै सियाराम।''

''जय सियाराम। बाहर आसन बिछा होगा, बिराजो।''......

''पंडित गंगाराम जी के घर पर मैंने आपके द्वारा रचित रामचरितमानस का पारायण किया था। मैंने उसे वाल्मीकि जी की कृति से श्रेष्ठ भक्ति-प्रदायक ग्रन्थ पाया।''

तुलसी को सुनकर संतोष हुआ। बोले- ''आदिकवि के परम पावन ग्रन्थ से उसकी तुलना न करो, देवी। वैसे यह जानकर मैं सन्तुष्ट हुआ कि तुमने यह ग्रन्थ पढ़ लिया।''

''रामचरितमानस की एक प्रति...।''

''शीघ्र ही तुम्हारे पास पहुँच जाएगी। टोडर प्रतिलिपियाँ कराने की व्यवस्था कर रहे हैं।''....

रत्नावली की आँखें बरस पड़ी। कुछ देर रुककर तुलसी गोसाईं ने पूछा– ''गईं?''

रुदन कंपित स्वर में रत्ना बोली- ''जा रही हूँ।''

''रो रही हो रत्ना?''

''संतोष के आँसू हैं।''

''अब न बहाओ, देवी, नहीं तो मेरे मन का धैर्य और संतोष बँट जायगा। सेवक का धर्म कठिन होता है।'' कहकर गोसाईं जी ने एक गहरी ठंडी साँस ढील दी।

''जाती हूँ। एक भिक्षा और माँग लूँ?''

''माँगो।''

''मेरी मृत्यु से पहले एक बार मुझे अपना श्रीमुख दिखलाने की कृपा करें।''

''वचन देता हूँ, आऊँगा।''

* * * *

शब्दार्थ -

संभ्रान्त	–	सभ्य व्यक्ति	प्रतीति	–	ज्ञान
पाकशास्त्री	–	खाना बनाने में प्रवीण	सान्निध्य	–	निकटता
लालता	–	ललचाता	मुहाना	–	मुख
कलिकाल	–	कलियुग	तिरोहित	–	विलुप्त
मृदुल	–	कोमल	ऊहापोह	–	असमंजस
किस्वत	–	नाई की पेटी	भृत्य	–	नौकर
गिरहस्त	–	गृहस्थ	अहंता	–	अहंकार

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. 'विरक्त अब फिर से राग के बंधनों में नहीं बंध सकता।' – यह कथन है–

(क) रत्नावली का (ख) तुलसीदास का

(ग) राजा भगत का (घ) टोडरमल का ( )

2. 'अब इस जन्म में हमारा-तुम्हारा साथ नहीं हो सकता' तुलसीदास के इस कथन में व्यंजित भाव है–

(क) वेदना (ख) पश्चात्ताप

(ग) वैराग्य (घ) तिरस्कार ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न -

1. राजा भगत अपने साथ किसको लेकर आए?
2. 'इस कलिकाल में ऐसा कठिन जोग साधने वाली जोगिन मैंने नहीं देखी।' - पंक्ति में 'जोगिन' शब्द किसके लिए प्रयुक्त हुआ है?
3. रत्नावली ने तुलसीदास से किस रचना की प्रति माँगी?
4. विदाई के समय भिक्षा के रूप में रत्नावली ने क्या विनती की?

लघूत्तरात्मक प्रश्न -

1. ''केशव, यह दोनों परस्पर विरोधी विशेषताएँ, वे मुझमें कदापि नहीं हो सकती।''- तुलसीदास के इस कथन में व्यक्त पीड़ा का उल्लेख कीजिए।
2. राजा भगत का तुलसीदास से मिलने का क्या उद्देश्य था? वे कहाँ तक सफल रहे?
3. ''रामजी कदाचित् मुझे इसीलिए दर्शन नहीं दे रहे हैं कि मैं रत्नावली से निठुराई बरत रहा हूँ।'' पंक्ति में निहित तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट कीजिए।
4. तुलसीदास ने रत्नावली को काशी में रहने की अनुमति क्यों नहीं दी?

निबंधात्मक प्रश्न -

1. 'सेवक का धर्म कठिन होता है।' कथन के आधार पर तुलसीदास के व्यक्तित्व व तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य का चित्रण कीजिए।
2. 'रत्नावली का चरित्र आदर्श भारतीय नारी का प्रतिबिम्ब है।'' – पाठ में आए घटनाक्रम के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

****